भारतीय राष्ट्रीय राजनीति में परम्परा एवं आधुनिकता का मेल एवं द्वन्द्व

डॉ० अरूण कुमार

भारतीय राजनीति को आकार देने का यह बौद्धिक प्रयत्न, जो इस द्वंद्व एवं समायोजन पर आधारित था, परंपरा तथा आधुनिकता के प्रति अपने रुप में ढुलमुल और बहुधा तो अंतर्विरोधपूर्ण स्थिति में बना रहा। भारत का अपने इतिहास के अविच्छिन्न विकास के दावे को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न उसकी परंपरा का हूबहू नकल करना नहीं था। अतीत पर जोर देने और 'स्त्रोत की ओर वापसी' का मतलब जरुरी तौर पर प्रगति की समकालीन शक्तियों के मुकाबले अतीत को फिर से हूबहू जीवित करना नहीं था। इसी तरह, आधुनिकता का मतलब भी अतीत की अस्वीकृति नहीं थी, क्योंकि परंपरा आधुनिकता को साकार करने का एक शक्तिशाली औजार था। उपनिवेशीकृत जाति के लिए इतिहास के अतीत और भविष्य के बीच भेद की स्पष्ट रेखा खींचने की कोई बौद्धिक प्रस्तुति नहीं थी। फलतः अतीत और भविष्य की उनकी अवधारणाएं ऐसी थीं जो एक दूसरे का अतिक्रमण करती थीं। द्वंद्व एवं समायोजन का यह क्रम पूरी 19वीं सदी तक चलता रहा तथा इसने राष्ट्रीय जीवन को रुपायित किया। इसमें बौद्धिक जनों के एक समुदाय की रचना का निर्णायक महत्व था। औपनिवेशिक शासन द्वारा सृजित वस्तुगत स्थितियों से बौद्धिक वर्ग की रचना का तो मार्ग प्रशास्त हुआ, परंतु उसे एक सक्रिय समुदाय के रुप में एकीकृत करने का काम सबकी शिरकत वाले सामाजिक–राजनीतिक प्रयत्नों ने किया। इस समुदाय के अंदर जो जुड़ाव पैदा हुआ वह राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के सक्रिय चरण में ही हुआ। हालांकि उसकी रचना की प्रक्रिया बहुत पहले, उन्नीसवीं सदी के लगभग शुरुआती दिनों में ही आरंभ हो गई थी, जब सामाजिक–सांस्कृतिक उपक्रमों के फलस्वरुप व्यक्तियों का अलगाव मिट चला था और आरंभ में क्षेत्रिय स्तर पर तथा बाद में राष्ट्रीय धरातल पर संपर्क के सूत्र स्थापित हो गए थे।